सत्य मार्ग की खोज, सीरीज़-27

क़ुरआन की 26 आयतों पर एतराज़ की हक़ीक़त

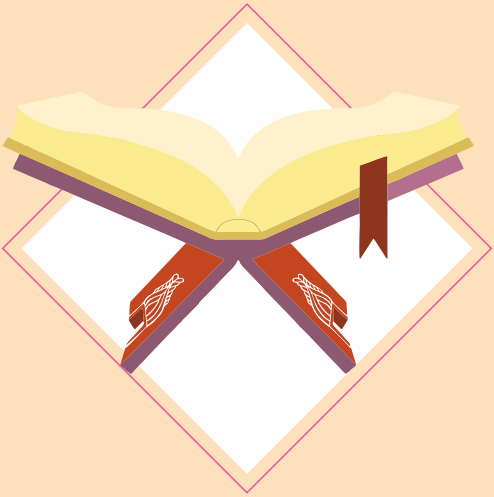

जमाअत इस्लामी हिन्द

दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, नई दिल्ली-110025

9810032508, 9650022638

www.islamsabkeliye.com

facebook.com/islamsabkeliyeofficial

ईश्वर, अति दयावान, अत्यंत कृपाशील के नाम से

क़ुरआन की 26 आयतों पर एतराज़ की हक़ीक़त

कुरआन ईश्वर अल्लाह की ओर से अवतरित एक धार्मिक ग्रन्थ है जिसका उद्देश्य समस्त इंसानों के समक्ष सत्यमार्ग और सत्यधर्म को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना है तथा उनके हृदय और विवेक से अपील कर उन्हें निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना है। वह चाहें तो अल्लाह ईश्वर द्वारा प्रदर्शित मार्ग को स्वीकार कर लें और चाहें तो उसका इनकार कर दें।

अत्यंत आश्चर्य की बात है कि क़ुरआन की प्रदान की गई इस स्वतंत्रता को समझे बग़ैर इसपर धर्म के मामले में ज़ोर–ज़बरदस्ती और नफ़रत को बढ़ावा देने का मनगढ़ंत आरोप लगाया गया। इसकी आयतों को प्रसंग और सन्दर्भ से अलग कर उनको मनचाहे अर्थ पहनाकर लोगों की भावना को इसके विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न किया गया, जो आज भी जारी है।

इस समय पूरे देश में क़ुरआन चर्चा का विषय बन गया है और कुछ लोग इसकी 26 आयतों को लेकर उनके विरुद्ध दुष्प्रचार में लगे हुए हैं। ऐसे में यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि उन आयतों का सही प्रसंग और उनका वास्तविक अर्थ सामने लाया जाए जिससे लोग स्वतंत्र रूप से अपने विवेक का उपयोग करते हुए सही निर्णय ले सकें। यहाँ यह बताना भी उचित मालूम होता है कि क़ुरआन के अध्याय और आयतों का क्रम और संख्या स्वयं पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल०) द्वारा निश्चित और निर्धारित किया गया था, न कि बाद के लोगों द्वारा। इस फोल्डर में अत्यंत संक्षेप के साथ चर्चा का विषय बनीं आयतों को समझाने का प्रयत्न किया गया है।

1. ''फिर, जब हराम के महीने बीत जाएं, तो 'मुशरिकों' को जहां कही पाओ क़त्ल करो, और पकड़ो, और उन्हें घेरो, और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो। फिर यदि वे 'तौबा' कर ले, नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दे, तो उनका मार्ग छोड़ दो। निसंदेह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला हैं।

(क़ुरआन 9:5)

क़ुरआन की इस आयत में मक्का के उन मुशरिकों के विषय में बात की गई है जिन्होंने हज़रत मुहम्मद (सल०) और उनके अनुयायिओं के विरुद्ध 13 वर्षों तक घोर अत्याचार किया था, मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना पहुंचाई थी, और उन्हें मक्का शहर से पलायन पर विवश कर दिया था। इतने पर भी जब उनको संतुष्टि नहीं हुई तो उन्होंने मदीना पर चढ़ाई करके हज़रत मुहम्मद (सल०) और उनके अनुयायियों पर एक के बाद कई युद्ध थोप दिए थे। मुसलमानों ने जब काबा की परिक्रमा के लिए मक्का जाने का प्रयत्न किया तो उनको मक्का की सीमा पर ही रोक दिया गया, जो कि सदियों से चली आ रही अरब प्रथा के विरुद्ध था। उस समय उन्होंने हज़रत मुहम्मद (सल०) के साथ एक संधि की जिससे मुसलमानों को वापस जाने पर विवश होना पड़ा था। उस संधि में 10 वर्षों तक युद्धबंदी और एक दुसरे के शत्रु कबीलों का साथ न देने पर भी समझौता हुआ था। परन्तु दो वर्ष भी व्यतीत न हुए थे कि उन्होंने बड़ी क्रूरता से उस शांति संधि को तोड़ दिया। और यह सब मात्र इसलिए कि हज़रत मुहम्मद (सल०) एक वास्तविक ईश्वर की उपासना करने का आह्वान कर रहे थे। उनके विरुद्ध युद्ध ही अंतिम रास्ता बचा था। सर्वविदित है कि शांति स्थापित करने के लिए कभी–कभी युद्ध अनिवार्य हो जाता है। इस आयत में उन्हीं से युद्ध की बात की गई है। यह युद्ध मुसलमानों की अपनी आत्मरक्षा और शांति स्थापित करने के लिए था, इसपर आतंक को बढ़ावा देने का आरोप कैसे लगाया जा सकता है।

2. ''हे 'ईमान' लानेवालो! 'मुशरिक' (मूर्तिपूजक) नापाक है।'' (क़ुरआन 9:28)

इस्लाम इंसान की सम्पूर्ण स्वच्छता और पवित्रता का आह्वान करता है। शारीरिक भी, मानसिक भी और अध्यात्मिक भी। तौहीद अर्थात एकेश्वरवाद अध्यात्मिक पवित्रता का प्रतीक है, जबकि शिर्क (अनेकेश्वरवाद) अपवित्रता का। यहाँ इसी अपवित्रता की ओर इशारा किया गया है, न कि शारीरिक अपवित्रता की ओर। यहाँ प्रयुक्त शब्द 'मुशरिक' का अर्थ अत्यंत व्यापक है, इसे मात्र मूर्तिपूजा तक सीमित करना उचित नहीं है। इस्लाम दुसरे धर्म के लोगों के साथ उठने–बैठने, खाने–पीने से मना नहीं करता और पूरे इतिहास में मुसलमानों ने कभी ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया भी नहीं है।

3. ''निसंदेह 'काफिर' तुम्हारे खुले दुश्मन हैं।''
(कुरआन 4:101)

इस्लामिक परिभाषा में 'काफिर' उन लोगों को कहा जाता है जो एकेश्वरवाद की सत्यता को समझने के उपरान्त उसको अस्वीकार कर दें। हज़रत मुहम्मद (सल०) और उनके अनुयायियों के विरुद्ध उस समय जिन काफिरों ने युद्ध छेड़ रखा था और हर जगह उनको प्रताड़ित करते रहते थे, उनकी दुश्मनी किसी से छिपी नहीं थी। आयत के मात्र इस अंश के बजाए यदि पूर्ण आयत को पढ़ा जाए तो बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि इसमें यात्रा के समय मुसलमानों को ऐसे खुले दुश्मनों से सावधान रहने को कहा जा रहा है, जो नमाज़ पढ़ते हुए मुसलमानों पर भी आक्रमण करने से नहीं चूकते थे। इससे अगली आयत 102 को इसके साथ मिलाकर पढ़ने से बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। इसको वर्तमान से जोड़ना दुर्भाग्यपूर्ण है।

4. ''हे 'ईमान' लानेवालो! (मुसलमानों!) उन 'काफिरो' से लड़ो जो तुम्हारे आस–पास है, और चाहिए कि वे तुममें सख्ती पाएं।'' (कुरआन 9:123)

जिस समय इस आयत का अवतरण हुआ है, पूरे अरब में काफिरों (एकेश्वरवाद का इनकार करने वाले) ने मुसलमानों के विरुद्ध भयानक रूप से चौतरफ़ा युद्ध छेड़ रखा था। मुसलमानों को अपमानित करने और उनको प्रताड़ित करने का कोई अवसर वह हाथ से नहीं जाने देते थे। लगभग दो दशक व्यतीत हो चुके थे मुसलमानों को यातनाएं भोगते हुए। अब समय आ गया था कि अपने हितों और प्राणों की रक्षा के लिए उन अत्याचारी काफिरों से मुक़ाबला किया जाए। इस आयत में मुसलमानों को इसी मुक़ाबले के लिए उभारा गया है और कहा गया है कि तुम सख्ती के साथ उनसे लड़ो। उस समय इसी आदेश का पालन करते हुए मुसलमानों ने उन अत्याचारियों पर विजय पाई थी और एकेश्वरवाद की शिक्षा के मार्ग की रुकावटों को दूर किया था।

5. ''जिन लोगों ने हमारी 'आयतों' का इन्कार किया, उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे। जब उनकी खालें पक जाएंगी तो हम उन्हें दूसरी खालों से बदल देंगे, ताकि वे यातना का रसास्वादन कर ले। निसंदेह अल्लाह प्रभुत्वशाली, तत्वदर्शी है।'' (कुरआन 4:56)

इस आयत में अल्लाह पारलौकिक जीवन में काफिरों को दी जाने वाली नरक की यातनाओं का उल्लेख कर रहा है। नरक की आग में झोंका जाना ही उनका अंतिम परिणाम होगा, जहाँ उनको सदा यातनाएं सहना पड़ेगा। नरक की आग से उनकी खालें जल जाएंगी तो उनको नई खालें प्रदान कर दी जाएंगी ताकि उनकी यातना कभी समाप्त न हो। यह सर्वशक्तिशाली ईश्वर अल्लाह का निर्णय है, इसपर इंसानों को कोई अधिकार नहीं है। नरक की यातनाओं की चेतावनी सभी धार्मिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। कुरआन उसी की ओर से अवतरित धर्मग्रन्थ है। इसमें इन यातनाओं का उल्लेख कोई आश्चर्य का विषय नहीं है।

6. ''हे 'ईमान' लानेवालो! (मुसलमानों!) अपने बापों और भाइयों को अपना मित्र मत बनाओ, यदि वे 'ईमान' की अपेक्षा 'कुफ्र' को पसन्द करें। और तुममें से जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा, तो ऐसे ही लोग ज़ालिम होंगे।'' (कुरआन 9:23)

सदा से होता आया है कि एकेश्वरवाद की सत्यता को स्वीकार करने वालों को उन्हीं के सगे–सम्बन्धियों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है और बलपूर्वक उनको शिर्क (अनेकेश्वरवाद) में ढकेलने का प्रयत्न होता है। यह प्रयत्न आज भी जारी है। मां–बाप, भाई–बहन का सम्बन्ध अत्यंत महत्वपूर्ण और सम्माननीय है, परन्तु इनको अपने वास्तविक मालिक अल्लाह ईश्वर पर प्राथमिकता और वरीयता नहीं दी जा सकती। वह यदि ईश्वरीय मार्गदर्शन के विरुद्ध जाने का आदेश देते हैं तो उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध कैसे बनाया जा सकता है? सत्य के लिए परिवार और समाज को त्याग देने के अनेको उदाहरण भारत के इतिहास में भी मिलते हैं।

7. ''अल्लाह 'काफिर' लोगों को मार्ग नहीं दिखाता।'' (कुरआन 9:37)

जो व्यक्ति सत्यमार्ग पहचानने के बाद भी उसे स्वीकार नहीं करता, उसे बलपूर्वक उसपर कैसे चलाया जा सकता है? यही बात है जो अल्लाह ने इस आयत में कही है। इस आयत को यदि पूरा पढ़ा जाता तो स्वयं ही स्पष्ट हो जाता कि यहाँ तो कोई आरोप बनता ही नहीं। उस समय मक्का में काफिरों की रीति थी कि वह युद्ध करने के लिए, अल्लाह द्वारा बताये गए आदर

के चार महीनों (जिनमें युद्ध पर प्रतिबंध था) को आगे–पीछे कर लिया करते थे। और ऐसा वह पूरी दृढ़ता और ज्ञान के साथ करते थे। अर्थात जान–बूझकर वह स्वयं भी पथभ्रष्ट होते थे और दूसरों को भी पथभ्रष्ट करते थे। इस आयत में अल्लाह अपना निर्णय सुना रहा है कि वह ऐसे अवज्ञाकारियों को सत्य–मार्ग कभी नहीं दिखाता। ऐसे में इस विषय पर युद्ध भड़काने और नफ़रत फैलाने के आक्षेप का क्या औचित्य हो सकता है?

8. ''हे 'ईमान' लानेवालों!.....और 'काफिरों' को अपना मित्र मत बनाओ। अल्लाह से डरते रहो यदि तुम ईमानवाले हो। (क़ुरआन 5:57)

जो लोग दूसरों के धर्म का हंसी और खेल बनाएं, उनको कोई भी अपना मित्र नहीं बनाएगा। यहूदी और ईसाई और उनके साथ क़ुरैश (जो काफिर थे) हर समय सत्यधर्म का हंसी और खेल बनाया करते थे। ऐसे में मुसलमानों से कहा जा रहा है कि उनको अपना मित्र मत बनाओ। इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। काश कि इस आयत को आधा–अधूरा लेने के बजाए पूरा पढ़ने का प्रयत्न किया गया होता।

9. ''फिटकारे हुए (गैर–मुस्लिम) जहां कही पाए जाएंगे, पकड़े जाएंगे और बुरी तरह कत्ल किए जाएंगे।'' (क़ुरआन 33:60,61)

इस आयत में 'फिटकारे हुए' का अनुवाद में ग़ैर–मुस्लिम जोड़ना उचित नहीं है। वास्तव में यहाँ इससे तात्पर्य है मुनाफ़िक़ (अर्थात कपटाचारी, पाखंडी)। यह अर्थ आयत 60 और 61 को मिलाकर पढ़ने से पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है। मुनाफिक वह लोग थे जो मुसलमान होने का दावा करते थे पर वह वास्तव में यहूदियों, ईसाईयों और काफ़िरों से मिले होते थे। वह भेद लेने के लिए हजरत मुहम्मद (सल०) के पास आते थे परन्तु पीठ–पीछे वह इनके बारे में अफवाहें उड़ाया करते थे। ऐसे कपटाचारी, पाखंडियों और गद्दारों को कोई समाज स्वीकार नहीं करता और इनको सदा मृत्युदंड देता आया है। यही निर्णय उस समय भी उनके लिए लिया गया। अल्लाह की ओर इसी का आदेश इन दोनों आयतों में दिया गया है। शांति स्थापना और सत्यधर्म की रक्षा के लिए उन्हें यह दंड देना अनुचित कैसे हो गया?

10. ''(कहा जाएगा) निश्चय ही तुम और वह जिसे तुम अल्लाह के सिवा पूजते थे 'जहन्नम' का ईंधन हो। तुम अवश्य उसके घाट उतरोगे।" (कुरआन 21:98)

अल्लाह ईश्वर की ओर से यहाँ बताया गया है कि तौहीद (एकेश्वरवाद) को छोड़कर जो लोग दूसरों की पूजा उपासना करते हैं उनका अंतिम ठिकाना जहन्नम (अर्थात नरक) ही होगा और वह उसमें अवश्य डाले जाएंगे। अल्लाह ने अपने पैग़म्बरों (अवतारों) और ग्रंथों के माध्यम से सदा यही सन्देश दिया है कि शिर्क (अनेकेश्वरवाद) सबसे बड़ा पाप है जिसको वह कदापि क्षमा नहीं करेगा। इस क्रम की पाँचवीं आयत में यह विषय इससे पूर्व भी आ चुका है, उसको पुनः देखा जा सकता है। इस आयत को कुरआन से निकालने की मांग का भला क्या औचित्य हो सकता है?

11. ''और उससे बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जिसे उसके 'रब' की 'आयतों' के द्वारा चेताया जाए, और फिर वह उनसे मुंह फेर ले। निश्चय ही हमें ऐसे अपराधियों से बदला लेना हैं।'' (कुरआन 32:22)

इससे पूर्व की आयत की तरह इसमें भी पारलौकिक जीवन में दिए जाने वाले दंड की बात की गई है। 'रब की आयतों' से तात्पर्य उसके अस्तित्व और उसके अकेले मालिक होने की निशानियाँ हैं जो पृथ्वी और आकाश में चारों ओर फैली हुई हैं। कुरआन के मंत्र भी इसी सत्य की गवाही देते हैं, इसलिए उन्हें भी आयत कहते हैं। इनका इनकार इन्सान को दंड का भागी बना देता है । इस दंड से बचाने के लिए अल्लाह ईश्वर ने समय–समय पर पैग़म्बर (अवतार) और ग्रन्थ भेजे और लोगों को डराया कि वह उसके साथ दूसरों को साझी बनाना और उनकी पूजा उपासना करना छोड़ दें अन्यथा उन्हें मृत्यु पश्चात घोर दंड का सामना करने पड़ेगा। बार–बार चेताए जाने के बाद भी जो इसकी अवहेलना करे, उससे बड़ा ज़ालिम कौन होगा? ऐसे ही ज़ालिमों को दण्डित किए जाने का उल्लेख यहाँ किया गया है। इसको आक्षेप का पात्र बनाना किसी प्रकार तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता।

12. ''अल्लाह ने तुमसे बहुत–सी 'ग़नीमतों' (लूट) का वादा किया हैं जो तुम्हारे हाथ आएंगी।''

(कुरआन 48:20)

इस्लामी परिभाषा के अनुसार युद्ध में शत्रु की कब्जा की हुई सम्पत्ति को ग़नीमत कहते हैं, इसे लूट का माल कहना कदापि अनुचित है। युद्ध में विजय प्राप्ति के परिणामस्वरूप प्राप्त की गई सम्पत्ति को सेना में वितरित करने की प्रथा पहले भी रही है और आज भी है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि इस्लामी शिक्षानुसार युद्ध करने की अनुमति और अधिकार केवल एक स्थापित राज्य को ही पहुँचता है, किसी व्यक्ति या गिरोह को नहीं। मुसलमानों पर अरब के सारे कबीलों ने युद्ध छेड़ रखा था। इनके साथ यहूदी और ईसाई भी शामिल थे। ऐसे में अपनी रक्षा के लिए युद्ध आवश्यक हो गया था। मुसलमानों को इसके लिए प्रोत्साहित करने और हौसल देने के उद्देश्य से उनसे यह वादा किया गया था, जिस प्रकार आज के समय फौज को विभिन्न रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। इसको आज के समाज के लिए खतरा बताना समझ से परे है।

13. ''तो जो कुछ 'गनीमत' (लूट) का माल तुमने हासिल किया हैं, उसे 'हलाल' व पाक समझकर खाओ।'' (क़ुरआन 8:69)

कुरआन के अध्याय 8 की इस आयत का उद्देश्य आरोप क्रम नंबर 12 से मिलता–जुलता है। उसमें शत्रु की पराजय में बहुत सारा ग़नीमत का माल मिलने का वादा किया गया था। इस आयत में उस सम्पत्ति को पूर्णरूप से वैध्य और पवित्र बताया जा रहा है और मुसलमानों को उसका उपयोग करने की अनुमति दी जा रही है। ज्ञात रहे की युद्ध की आवश्यकता तब पड़ी थी जब मुसलमानों पर चारों ओर से आक्रमण होना आरम्भ हो गया था और उनको मिटाने का हर संभव प्रयत्न किया जाने लगा था। इस विषय का सम्बन्ध वर्तमान की किसी भी परिस्थिति से नहीं है, इसलिए इसको कुरआन से निकालने की बात करना दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है।

14. ''हे नबी! 'काफिरों' और 'मुनाफ़िको' के साथ जिहाद करो, और उनपर सख्ती करो और उनका ठिकाना 'जहन्नम' है, और बुरी जगह हैं जहां पहुंचे।'' (क़ुरआन 66:9)

इस आयत में काफ़िरों और मुनाफ़िकों के साथ जिस जिहाद या युद्ध पर उभारा जा रहा है, उसका आरंभ मुसलमानों ने नहीं किया था। एकेश्वरवाद के सीधे–सादे सन्देश को स्वीकार करने के बजाए उसके

विरुद्ध खड़े हो जाना, पूरे अरब की सेना को एकत्रित कर मदीना पर चढ़ाई कर देना, मुसलमानों के विरुद्ध यहूदियों और ईसाईयों को भी साथ मिला लेना, उनके अन्दर छिपी कुटिलता को पूरी तरह उजागर कर देता है। सत्य के सन्देश के रास्ते का रोड़ा बने लोगों के विरुद्ध युद्ध के अतिरिक्त कोई रास्ता बचा ही नहीं था। इसी युद्ध और जिहाद पर मुसलमानों को इस आयत में उभारा जा रहा है। यह आत्म–रक्षात्मक युद्ध था, न कि आतंकवाद। यह युद्ध तो आतंक को रोकने के लिए ही था। युद्ध थोपने वालों को उनके दुष्कर्मों के परिणाम स्वरूप उनका अन्तिम ठिकाना जहन्नम (नरक) बताया जाना स्वाभाविक ही है।

15. ''तो अवश्य हम 'कुफ्र' करने वालों को यातना का मजा चखाएंगे, और अवश्य ही हम उन्हें सबसे बुरा बदला देंगे उस कर्म का जो वे करते थे।''

(कुरआन 41:27)

इस आयत पर आरोप लगाने से पूर्व यदि इसी अध्याय की इससे पहले वाली आयत को भी देख लिया गया होता तो सारी शंका का समाधान आसानी से हो गया होता। उसमें बताया गया है कि कुफ्र करने वाले हजरत मुहम्मद (सल०), उनके अनुयायियों और उस समय अवतरित हो रहे कुरआन के विरुद्ध घिनौने षड्यंत्र करते थे और लोगों को भड़काते थे कि कुरआन को मत सुनो, बल्कि इतना शोर मचाओ कि कुरआन को कोई भी न सुन सके और इसी में तुम्हारी विजय है। इन षड्यंत्रों से आक्रोशित होकर अल्लाह उन कुफ्र करने वालों को यातना की भविष्यवाणी सुना रहा है। उनके पापों का दंड तो उनको मिलना ही चाहिए। इसको आतंक को प्रोत्साहित करने वाली आयत कैसे कहा जा सकता है ?

16. ''यह बदला है अल्लाह के शत्रुओं का ('जहन्नम' की) आग। इसी में उनका सदा घर हैं, इसके बदले कि हमारी 'आयतों' का इन्कार करते थे।''

(कुरआन 41:28)

वास्तव में आरोप नंबर 14, 15 और 16 एक ही अध्याय 41 की एक के बाद एक आने वाली तीन आयतें हैं और इन तीनों में एक ही विषय पर चर्चा की गई है। इनको अलग–अलग करके तीन आरोप बनाने का औचित्य समझ से परे है। इन तीनों आयतों का विषय है एकेश्वरवाद का इनकार करने वालों का मृत्यु पश्चात

दण्डित किया जाना। अल्लाह ईश्वर ऐसे लोगों को अपना शत्रु घोषित करता है और उनको नरक (जहन्नम) की आग की चेतावनी देता है। 'आयतों' से तात्पर्य है ईश्वर अल्लाह की निशानियाँ, जो चारों ओर फैली हुई हैं। (आरोप संख्या 11 के स्पष्टीकरण को पुनः देख लें)। समझ रखने वालों को यह आयतें स्पष्ट सन्देश दे रही हैं कि इस विशाल संसार का एक ही रचयिता और संचालक है जिसके अतिरिक्त किसी अन्य की उपासना उसके साथ शत्रुता के सामान है। उसकी घोषणा है कि वह इस सबसे बड़े पाप का दंड अवश्य देगा। इस चेतावनी से समाज में आतंक और घृणा के समाप्त होने की सम्भावना तो अवश्य है, फैलने की नहीं।

17. ''निरूसन्देह अल्लाह ने 'ईमान' वालों (मुसलमानों) से उनके प्राणों और मालों को इसके बदले में खरीद लिया हैं कि उनके लिए 'जन्नत' हैं वे अल्लाह के मार्ग में लड़ते है तो मारते भी हैं और मारे भी जाते हैं।'' (क़ुरआन 9:111)

अधर्म को मिटाने, अन्याय को रोकने और अत्याचार को समाप्त करने के लिए अन्थक–प्रयत्न (जिहाद) करने की शिक्षा सभी धर्मों में दी गई है। इस अन्थक–प्रयत्न में जीवन का बलिदान भी देना पड़ जाता है और कभी आत्मरक्षा में दूसरों का जीवन लेने का कठिन अवसर भी आ जाता है। देश की रक्षा में सीमाओं पर सैनिक मरते भी हैं और मारते भी हैं। अधर्म को मिटाने के अन्थक–प्रयत्न में ईश्वर अल्लाह पर आस्था रखने वालों में कमजोरी पैदा न हो, और वह अपने उत्तरदायित्व से पीछे न हटें, ईश्वर अल्लाह द्वारा इस विशेष शैली में उन्हें प्रोत्साहित किया गया है। हजरत मुहम्मद (सल०) और उनके अनुयायियों पर जिस क्रूर तरीके से चौतरफ़ा आक्रमण हो रहा था, इस प्रकार के प्रोत्साहन की आवश्यकता को आसानी से समझा जा सकता है। इस आयत के कारण न कोई आतंक फैलने की सम्भावना है, न नफ़रत।

18. ''अल्लाह ने इन मुनाफिक (अर्ध मुस्लिम) पुरुषों और मुनाफिक स्त्रियों और 'काफिरों' से 'जहन्नम' की आग का वादा किया है जिसमें वे सदा रहेंगे। यही उन्हें बस हैं। अल्लाह ने उन्हें लानत की और उनके लिए स्थायी यातना हैं।'' (क़ुरआन 9:68)

एकेश्वरवाद के सन्देश को रोकने में जहां काफ़िरों,

यहूदियों और ईसाईयों ने अपना पूरा बल झोंक रखा था, वहीं सत्य धर्म को अन्दर से विध्वंस करने के लिए मुनाफ़िक (कपटाचारी, पाखंडी) भी पीछे नहीं थे। हज़रत मुहम्मद (सल०) जहां लोगों को बुराई से रोकने और भलाई पर उभारने का प्रयत्न कर रहे थे, यह मुनाफ़िक लोगों को बुराई पर उकसाते और भलाई से रोकते थे। उनका यह चरित्र इसी अध्याय की इससे पूर्व की आयत 67 में पूर्णरूप से प्रकट हो जाता है। यदि इन दोनों आयतों को एक साथ मिलाकर पढ़ा जाए तो पूरा अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इस दुष्कर्म में मुनाफ़िक स्त्री और पुरुष मिलकर लोगों को पथभ्रष्ट करने में लगे थे। स्वयं भी अल्लाह ईश्वर की अवज्ञा करते थे और दूसरों को भी इस पर उकसाते थे। इन पाखंडियों और कपटाचारियों को यह आयत नरक (जहन्नम) के कठोर दंड की चेतावनी देने के उद्देश्य से अवतरित हुई थी, इनसे न पहले समाज में नफ़रत फैली है, न अब इसकी कोई सम्भावना है।

19. ''हे नबी! 'ईमान' वालों (मुसलमानों) को लड़ाई पर उभारो। यदि तुम में 20 जमे रहने वाले होंगे तो वे 200 पर प्रभुत्व प्राप्त करेंगे, और यदि तुममें 100 हों तो 1000 'काफ़िरो' पर भारी रहेंगे, क्योंकि वे ऐसे लोग हैं जो समझ–बूझ नहीं रखते।'' (क़ुरआन 8:65)

हज़रत मुहम्मद (सल०) और उनके अनुयाइयों के विरुद्ध युद्ध में क़ुरैश और उनके साथी क़बीलों की संख्या सदा ही बहुत अधिक रही और उनके पास युद्ध सामग्री की भी भरमार रहती थी। इस घोर विपरीत परिस्थिति में सत्य धर्म की रक्षा में लगे मुसलमानों का हौसला बढ़ाने और उन्हें युद्ध में जमाए रखने के लिए अल्लाह ईश्वर की ओर से इस विशिष्ट शैली का उपयोग किया गया था। इन्हीं प्रोत्साहन का परिणाम था कि मुसलमान युद्ध में उनको पराजित करने में सफल रहे थे। इस आयत का उद्देश्य सिर्फ़ उस समय के अत्याचारी और आक्रमणकारी काफ़िरों के विरुद्ध युद्ध पर उभारना था, न कि पूरे विश्व के काफ़िरों और ग़ैर–मुस्लिमों के विरुद्ध। इस आयत को इसी परिपेक्ष में देखा जाना चाहिए।

20. ''हे ईमान लानेवालों (मुसलमानों) तुम यहूदियों और ईसाईयों को मित्र न बनाओ। ये आपस में एक दूसरे के मित्र हैं। और जो कोई तुममें से उनको मित्र

बनाएगा, वह उन्हीं में से होगा। निस्सन्देह अल्लाह जुल्म करने वालों को मार्ग नहीं दिखाता।''

(कुरआन 5:51)

यहूदियों और ईसाईयों को भलीभांति इस बात का ज्ञान था कि हज़रत मुहम्मद (सल०) सच्चे पैग़म्बर (अवतार) हैं और वह उसी सत्य मार्ग की ओर लोगों का आह्वान कर रहे हैं जो उनके धार्मिक ग्रंथों में पहले से मौजूद था। इसके उपरान्त भी उन्होंने हज़रत मुहम्मद (सल०) और उनके साथियों का विरोध किया, उनसे युद्ध किया और ईश्वरीय सन्देश को मिटाने का हर संभव प्रयत्न कर डाला। वह मुसलमानों से दोस्ती का स्वांग रचते थे जबकि वास्तव वह में उनके सबसे बड़े शत्रु थे। इस आयत में अल्लाह ईश्वर की ओर से मुसलमानों को उनके धोखे से बचाने के लिए उन्हें सावधान किया जा रहा है कि यह लोग तुम्हारे हितैषी नहीं हैं, इनको अपना मित्र मत समझो। यह आयत न झगड़ों पर उभारती है और न ही मुसलमानों ने पूरे इतिहास में इसका यह अर्थ लिया है।

21. ''किताब वाले जो न अल्लाह पर 'ईमान' लाते हैं, न अन्तिम दिन पर, न उसे 'हराम' करते हैं जिसे अल्लाह और उसके 'रसूल' ने हराम ठहराया है, और न सच्चे 'दीन' को अपना 'दीन' बनाते हैं, उनसे लड़ो यहां तक कि वे अप्रतिष्ठित (अपमानित) होकर अपने हाथों से जिजिया देने लगें।'' (कुरआन 9:29)

किताब वाले से यहाँ तात्पर्य यहूदी और ईसाई हैं जिनके पास अल्लाह ईश्वर की ओर से पूर्व में अवतरित किताब मौजूद थी और जिनमें हजरत मुहम्मद (सल०) के अवतरण की भविष्यवाणी भी दी हुई थी। इसके उपरान्त भी यह लोग न अल्लाह ईश्वर पर ईमान लाए, न अंतिम दिन पर और न ही सच्चे दीन को अपना दीन बनाया। इससे भी अधिक यह कि जिस शासन में रहते थे उसी के विरुद्ध विद्रोह करते रहते थे। यही कारण है कि इनके विरुद्ध युद्ध का आदेश दिया गया। जकात देना इनपर अनिवार्य नहीं किया जा सकता था, पर मुसलमानों के अतिरिक्त दूसरों से लिया जाने वाला टैक्स जिज़िया तो इन्हें अवश्य देना चाहिए था। पर यह उससे भी बचते थे। इस आयत में उनसे इसी जिज़िया टैक्स वसूलने की

बात की गई है जिसके उपरान्त ही उनके जान–माल की रक्षा की जिम्मेदारी सत्ता पर बनती थी। टैक्स चोरों के खिलाफ आज भी हर देश में सख्त कानून उपलब्ध है। इस आयत का उद्देश्य बलपूर्वक धर्म परिवर्तन कराना कदापि नहीं था और न इसका इस रूप में कभी उपयोग किया गया है। 'धर्म के विषय में कोई जबरदस्ती नहीं।' (कुरआन 2:256) और इसी प्रकार की अन्य आयतों से यह सत्य पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम बलपूर्वक धर्म परिवर्तन की अनुमति नहीं देता। और न ही बलपूर्वक धर्म परिवर्तन संभव है।

22. ''.....फिर हमने उनके बीच 'कियामत' के दिन तक के लिए वैमनस्य और द्वेष की आग भड़का दी, और अल्लाह जल्द उन्हें बता देगा जो कुछ वे करते रहे हैं।" (कुरआन 5:14)

इस आयत में जिस वैमनस्य और द्वेष का उल्लेख है वह मुसलमानों और गैर–मुस्लिमों के बीच नहीं बल्कि ईसाईयों के विभिन्न वर्ग और समूहों के बीच फैले वैमनस्य और द्वेष को लेकर है। उनके पास पैग़म्बर हजरत ईसा (अल०) अल्लाह की ओर से उसी सत्य मार्ग को लेकर आए थे जो हज़रत मुहम्मद (सल०) प्रस्तुत कर रहे थे। पर उन्होंने उस समय भी उसको स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। हजरत मुहम्मद (सल०) के आगमन के बारे में की गई उनकी भविष्यवाणी की भी उन लोगों ने अवहेलना कर डाली। ऐसे में दंड स्वरूप अल्लाह ईश्वर ने आपस में इनके दिलों में शत्रुता और द्वेष डाल दिया जिस कारण वह सदा आपस में लड़ते रहे। यहाँ उसी वैमनस्य और द्वेष की ओर इशारा किया गया है। इस आयत का सही अर्थ समझने में ग़लतफहमी न हुई होती यदि इस पूरी आयत का अध्ययन किया गया होता, न कि आयत के एक अंश का। इस विषय में न तो किसी के विरुद्ध नफरत फैलाने की शिक्षा दी गई है, न ही इससे किसी को कोई हानि का ख़तरा है।

23. ''वे चाहते है कि जिस तरह से वे 'काफ़िर' हुए हैं उसी तरह से तुम भी 'काफ़िर' हो जाओ, फिर तुम एक जैसे हो जाओ, तो उनमें से किसी को अपना साथी न बनाना जब तक वे अल्लाह की राह में हिजरत न करें, और यदि वे इससे फिर जावे तो उन्हें जहां कही पाओ पकड़ो और उनका वध (कत्ल) करो। और उनमें से

किसी को साथी और सहायक मत बनाना।''

(कुरआन 4:89)

इस आयत में मुनाफिक़ों का उल्लेख है जिन्होंने षड्यंत्र के रूप में सत्यधर्म को स्वीकारने का स्वांग रचा था, पर वास्तव में वह उसका इनकार करने वाले ही बने रहे थे। वह मुसलमानों को भड़काने और सत्यधर्म से विद्रोह करने पर उकसाया करते थे और चाहते थे कि सब उन्हीं जैसे बन जाएँ। ऐसे कपटी लोगों को मुसलमानों का दोस्त नहीं कहा जा सकता था। उनसे मित्रता करना और उनको अपना साथी बनाना स्वयं अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने जैसा होता। यह कपटाचारी चारों तरफ फैले काफ़िरों से अधिक ख़तरनाक थे। बल्कि यह आस्तीन का सांप थे जो अन्दर घुसकर डस लेता है। युद्ध के माहौल में इनके षड्यंत्र और स्वांग से मुसलमानों को गंभीर नुकसान पहुंच सकता था। ऐसे धोखेबाजों की सदा एक ही सज़ा रही है, वह है मृत्युदंड। यह आयत मुसलमानों को इन कपटाचारियों के ख़तरे से सावधान करने के लिए उतरी थी, इससे किसी दुसरे को ख़तरे की कोई आशंका नहीं होनी चाहिए।

24. ''उन (काफ़िरों) से लड़ो! अल्लाह तुम्हारे हाथों उन्हें यातना देगा, और उन्हें रुसवा करेगा और उनके मुकाबले में तुम्हारी सहायता करेगा, और 'ईमान' वालों के दिल ठंडे करेगा।'' (कुरआन 9:14)

कुरआन के अध्याय 9 की इस आयत में जिन काफ़िरों से लड़ने की बात की गई है, वह वही काफ़िर हैं जिनका उल्लेख आरोप संख्या 1 में किया जा चुका है। इसका संकेत आज देश–विदेश में बसने वाले गैर–मुस्लिमों की ओर कदापि नहीं है और न ही उनसे लड़ने पर उकसाया जा रहा है। यह सत्य पूर्णरूप से समझ में आ गया होता और इस आयत को समझने में कोई ग़ लतफहमी न हुई होती, यदि इस अध्याय की इससे पूर्व की दो आयतें 12 और 13 भी देख ली गईं होतीं। इन दोनों आयतों में मुसलमानों से की हुई संधि को तोड़ने और धर्म पर चोटें करने के उल्लेख के साथ ही यह भी कहा गया है तुम ऐसे लोगों से क्यों नहीं लड़ोगे जिन्होंने तुम्हारे साथ धोखा किया है, तुम सब को शहर से निकाल दिया और सदा तुम्हारे विरुद्ध छेड़खानी में पहल की है। इस युद्ध में मुसलमानों का हौसला बढ़ाने के लिए अल्लाह इस आयत में यह

वादा कर रहा है कि उनके विरुद्ध युद्ध में वह तुम्हारा साथ देगा और तुम्हारे हाथों उनको रुसवा करवाएगा। अल्लाह का यह वादा सच्चा था और इतिहास प्रमाणित करता है कि अल्लाह ने मुसलमानों के हाथों उनको पराजित भी कराया और रुसवा भी।

25. "हम शीघ्र ही इनकार करनेवालों के दिलों में धाक बिठा देंगे, इसलिए कि उन्होंने ऐसी चीजों को अल्लाह का साझी ठहराया है जिनके साथ उसने कोई सनद नहीं उतारी, और उनका ठिकाना आग (जहन्नम) है। और अत्याचारियों का क्या ही बुरा ठिकाना है।"

(कुरआन 3:151)

कुरआन के अध्याय 3 में इस आयत के पूर्व की दो आयतों 149 और 150 में मुसलमानों को इनकार करने वालों की बातों में आकर उनके मार्ग का अनुसरण करने से सावधान किया गया है इसलिए कि वह मुसलमानों को सत्यमार्ग से भटकाने की इच्छा छिपाए हुए थे और चाहते थे कि वह भी उनके जैसे पथभ्रष्ट हो जाएँ। इस पथभ्रष्टता के भयानक परिणाम से अल्लाह बार–बार सचेत करता रहा है जिसका अंतिम परिणाम जहन्नम की आग के अतिरिक्त और कुछ नहीं होने वाला। यह भी बताया गया है कि यदि वह अपने कदमों को सत्यमार्ग पर जमाए रखेंगे तो अल्लाह उनकी रक्षा करेगा और हर प्रकार से उनकी सहायता करेगा। उसके उपरान्त उपर्युक्त आयत में अल्लाह ने बताया है कि इस संरक्षण और सहायता का एक रूप यह होगा कि वह इनकार करने वालों के दिलों में सत्यमार्ग पर जमे रहने वालों की धाक बिठा देगा। यह वह लोग हैं जिन्होंने अल्लाह ईश्वर के साथ दूसरी चीजों को साझी बनाया है, जबकि उसका कोई साझी है ही नहीं। इस आयत को लेकर किसी गलतफहमी की कोई सम्भावना न होती यदि इन तीनों आयतों को एक साथ मिलाकर पढ़ा गया होता।

26. "और जहाँ कहीं उनपर काबू पाओ, कत्ल करो और उन्हें निकालो जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है, इसलिए कि फ़ितना (उपद्रव) कत्ल से भी बढ़कर गम्भीर है। लेकिन मस्जिदे–हराम (काबा) के निकट तुम उनसे न लड़ो जब तक कि वे स्वयं तुमसे वहाँ युद्ध न करें। अतः यदि वे तुमसे युद्ध करें तो उन्हें कत्ल करो – ऐसे इनकारियों का ऐसा ही बदला है।"

(कुरआन 2:191)

क़ुरआन और इस्लामी इतिहास के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हज़रत मुहम्मद (सल०) के सत्यमार्ग और एकेश्वरवाद के आह्वान को उस समय के लोगों ने स्वीकार करने के बजाए उसका घोर विरोध किया। इतना ही नहीं, वह विरोध से बहुत आगे बढ़कर सत्यधर्म को स्वीकार करने वालों को प्रताड़ित भी करने लगे, उनको उनके घरों से निकाल दिया, उनके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और यहूदियों और ईसाईयों को भी मुसलमानों पर चढ़ा लाए। लाचार होकर मुसलमानों को इस उपद्रव को समाप्त करने के लिए अपनी अत्यंत कम संख्या के उपरान्त भी उनसे युद्ध करना पड़ा। मुसलमानों की ओर से युद्ध का उद्देश्य न धन–दौलत था, न सम्पत्ति। वह तो मात्र अपने जान–माल और सत्यधर्म की रक्षा के लिए लड़ रहे थे। इस आयत से पहले और इसके बाद की दो आयतों को साथ मिलाकर पढ़ने से यह सत्य पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। अल्लाह ने लड़ने की अनुमति तो दी पर नैतिकता की सीमा में रहते हुए। यह भी बताया कि कत्ल वैसे तो एक घृणित कार्य है, पर उपद्रव उससे भी बुरी चीज है। इन आयतों में दिया गया आदेश आत्मरक्षा और उपद्रव को समाप्त करने के लिए था, न कि आतंक फैलाने के लिए जैसा की आरोप लगाया जा रहा है।

आदरणीय भाइयों और बहनों, आशा है आपको क़ुरआन पर लगाए गए अनुचित आक्षेपों की वास्तविकता का बोध हो गया होगा और यह बात भी स्पष्ट हो गई होगी कि किसी भी धार्मिक पुस्तक की शिक्षाओं को परिपेक्ष से हटाकर पढ़ने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। सत्यमार्ग में बाधा डालने वालों और कपटाचारियों के विरुद्ध संघर्ष करने की शिक्षा हर धार्मिक पुस्तक में मिलती है। आवश्यक है कि उन्हें उसी सन्दर्भ में देखा जाए और उनको ग़लत अर्थ पहनाने से बचा जाए। आशा है इस सन्देश को समस्त देशवासियों तक पहुँचाने में आप हमारा सहयोग अवश्य करेंगे। धन्यवाद

✵✵✵✵

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें
dawah.jih@gmail.com